हिन्दी साहित्यकार उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में चित्रित नारी यथार्थ

राखी पचौरी
शोधार्थिनी, हिन्दी विभाग, आगरा कॉलेज, आगरा

Article Info

Publication Issue :
January-February-2023
Volume 6, Issue 1

Page Number : 168-173

Article History
Received : 01 Jan 2023
Published : 20 Jan 2023

शोध सार- आधुनिक महिला साहित्यकारों में विशिष्ट स्थान रखने वाली उषा प्रियंवदा हिन्दी साहित्य जगत का एक ऐसा नाम है जिन्होंने न केवल राष्ट्रीय स्तर पर, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी ख्याति अर्जित की। उन्होंने विदेशी भूमि पर रहते हुए भी हिन्दी साहित्य को गरिमा पूर्ण स्थान प्रदान किया है। यूँ तो उषा जी का सहित्य जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रस्तुत करता है किन्तु उनके साहित्य में सर्वप्रमुख स्थान नारी जीवन के कटु यथार्थ की अभिव्यक्ति का है। उषा जी के कथा साहित्य, विशेषत: उपन्यासों को नारी जीवन का प्रमुख हस्ताक्षर कहा जा सकता है। उनके उपन्यासों में पारिवारिक और सामाजिक जीवन में संघर्ष करती हुई नारी समय के साथ-साथ अत्यंत समृद्ध और विकसित व्यक्तित्व को प्राप्त करती हुई दृष्टिगोचर होती है।

मुख्य शब्द:- संत्रास, अन्तर्द्वन्द्व, छटपटाहट, विसंगति बोध, संघर्षशील, हतप्रभ।

वर्तमान हिन्दी साहित्य जगत में उषा प्रियंवदा एक ऐसा नाम है जिन्होंने नारी जीवन को सशक्तता प्रदान की है। आधुनिक भारत में जन्मी उषा जी ने केवल भारत की नारी को ही नहीं देखा अपितु विदेशी धरती पर जाकर वहाँ की नारी के अस्तित्व को भी गहराई से समझा और अनुभूत किया। चूँकि उषा जी स्वयं एक स्त्री है इसलिए स्त्री जीवन की वेदना, संत्रास के कटु यर्थात को वे बहुत सूक्ष्मता से उजागर कर पायी हैं। उषा जी आधुनिक साहित्यकार है और आधुनिक साहित्य का मूल बिन्दु कल्पना अथवा अयथार्थ के स्थान पर 'यथार्थ' को स्वीकार किया गया है। यही यथार्थ उषा जी के साहित्य का भी प्रमुख बिन्दु है। उनके साहित्य में परिवार और समाज के परिप्रेक्ष्य में नारी प्रमुख तत्व बनकर उभरी है। उषा जी का उपन्यास सहित्य नारी जीवन की कटुता का जीवंत यथार्थ चित्रण कहा जा सकता है। युगीन चेतना का प्रभाव उषा जी के साहित्य पर स्पष्ट देखा जा सकता है। वे आधुनिक समाज में नारी स्वातंत्र्य की पक्षधर रही हैं। आज 21 वीं सदी में भी भारतीय नारी पुरूषोचित सोच के कारण कमतर आंकी जाती है उसके अस्तित्व को हीनता की दृष्टि से देखा जाता है- "नव चेतना से युक्त शिक्षित नारी जीवन में पुरूषोचित बोझ उठाती है।"[1]

यह बात उषा जी को सर्वथा असहनीय है। प्राचीन भारतीय सहित्य में नारी को सर्वोच्च स्थान दिया गया था। शास्त्रों के अनुसार नारी सुकुमारता, लावण्य , प्रेम, त्याग, स्नेह, करूणा, दया, वात्सल्य और ममता की साकार प्रतिमा है, किन्तु बदलते समय और परिवेश् के साथ नारी की स्थिति में व्यापक परिवर्तन आया। मध्यकालीन सामंती परिवेश एवं रूढ़िवादी सामाजिक मान्यताओं में आबद्ध सामंतवादी समाज में नारी पुरूष की सहचरी अथवा सहधर्मिणी न होकर मात्र अनुगामिनी बन कर रह गई। प्राचीन समय में जो नारी सामाजिक विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखती थी मध्यकालीन समय में उसे घर की चहारदीवारी में समीति कर दिया गया, उसकी भूमिका एक पत्नी, माँ और बहन के रूप में परिवार का संचालन

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

करने में थी इसके अतिरिक्त समाज में उसका कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं था, किन्तु आधुनिक युग में एक बार पुन: स्त्री की स्थिति में परिवर्तन आया। आधुनिक समाज सुधारकों ने नारी के प्रति सामाजिक दृष्टिकोंण में परिवर्तन किया और नारी शिक्षा पर जोर देते हुए उसे समाज के विकास का आधार तत्व माना "प्रत्येक युग परिवर्तन के साथ-साथ नारी की स्थिति में भी परिवर्तन होता रहा है।''[2]

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय नारी के जीवन में पर्याप्त परिवर्तन आया है। उषा प्रियंवदा का साहित्य नारी चेतना का साहित्य है एक ओर जहाँ उनके नारी पात्र घुटन, संत्रास, उदासी और अकेलेपन से जूझ रहे हैं वही दूसरी ओर अपने स्वतंत्र अस्तित्व को भी खोजते हुए दिखाई देते हैं। उषा जी ने आज के जटिल सामाजिक एवं पारिवारिक संघर्ष में उलझी नारी की विभिन्न मन: स्थितियों का यथार्थ अंकन किया है। उषा जी की नारी पात्र पारिवारिक विघटन, दाम्पत्य जीवन की असफलता, धनाभाव, विसंगति बोध, अवसाद, घुटन पीड़ा, दर्द, संत्रास तथा तनावों के यथार्थ का सामना करते हुए स्वाबलंबी बनी है, वैचारिक दृष्टि से मजबूत हुई है तथा शिक्षित होने के साथ अपने निर्णय स्वयं लेने में सक्षम हुई है।

उषा जी ने न केवल नारी जीवन से जुड़े बाह्य परिवेश एवं संघर्ष को अभिव्यक्ति दी अपितु उसकी आंतरिक उथल-पुथल को भी उजागर किया है। आधुनिक युग भौतिकवादी युग है इस युग में मानव जाति ज्यों-ज्यों प्रगति कर रही है त्यों-त्यों नैतिकता का ह्रास होता जा रहा है। ऊब, छटपटहाट, घृणा, अनास्था, वैमनस्य का भाव मनुष्य के ह्रदय में प्रतिष्ठित होता जा रहा था जिस कारण पूरा वातावरण अनैतिक हो गया इस कृत्रिम वातावरण से नारी भी स्वयं को मुक्त नहीं कर पायी है। जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव परिवार, समाज और संस्कृति तीनों पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उषा जी की रचनाओं का मूल विषय नारी चेतना के साथ मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन की समस्याओं के यथार्थ का अंकन करना है, वे नारी जीवन के यथार्थ को बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ अपने उपन्यासों में उजागर करने में सफल हुई है। उनके उपन्यासों में नारी जीवन का कटु यथार्थ निराशा, घुटन, ऊब आदि के रूप में प्रकट हुआ है परन्तु उषा जी की नारी पात्र इन विषम परिस्थितियों में अपने जीवन को नष्ट नहीं करती बल्कि इनका विरोध करके अपने स्वतंत्र अस्तित्व को खड़ा करते हुए नारी समाज को जाग्रत करती हैं। पचपन खंभे लाल दीवारें' उपन्यास की 'सुषमा' आर्थिक समस्याओं के दंश को झेलते हुए भी स्वयं को मजबूत रखती है। सेवानिवृत पिता के घर में जीविका का कोई और साधन न होने के कारण वह स्वयं अपने पिता की जिम्मेदारियों का निर्वहन करती है। जिसके लिए उसे अपने प्रेम, अपनी खुशियों और इच्छाओं का दमन करना पड़ता है- "यह कॉलेज यह खंभे मेरी डेस्टिनी है मुझे यहीं छोड़ दो''[3]

भले ही सुषमा आधुनिक समाज की शिक्षित और आत्मनिर्भर नारी है किन्तु फिर भी अपनी भारतीय संस्कृति और परम्पराओं को सहेजकर चलने वाली है, वह कभी भी अपने सांस्कृतिक मूल्यों का हनन नहीं करती। नील से उसका प्रेम संबंध पवित्र है वह नील से विवाह भी करना चाहती है, किन्तु परिवार की आर्थिक स्थिति और भाई बहनों के प्रति अपनी जिम्मेदारियों के कारण अपने प्रेम का गला घोंट देती है। अन्दर से टूटकर भी वह बाहर से मुस्कुराती है। सुषमा के माध्यम से उषा जी ने भारतीय नारी का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है। एक ओर जहाँ सुषमा जैसी स्त्री अपने परिवार की खुशियों और जीविकोपार्जन हेतु स्वयं की आकांक्षाओं का बलिदान करती है वहीं दूसरी ओर रूकोगी नहीं राधिका की नायिका अपने पिता के दूसरे विवाह की बात अस्वीकार करके अपनी खुशियों को महत्व देती है और विदेश चली जाती है। राधिका अपने पिता के लाड़-प्यार की छाया में पली-बढ़ी इकलौती पुत्री है, वह अपने पिता पर अपना एकाधिकार समझती है। जब वह अपने पिता के, अपने से 20 वर्ष छोटी विद्या के साथ विवाह की बात सुनती है तो वह क्रोधित हो जाती है। वह नहीं चाहती कि उसके पिता दूसरा विवाह करें, वह अपने पिता का विरोध करते हुए कहती है- "जो आप चाहते हैं, वही हमेशा क्यों हो ? मैं आपकी बेटी हूँ, ठीक है, पर अब मैं बड़ी हो चुकी हूँ, जो चाहूँगी वही करूँगी''[4] राधिका अपने पिता से नाराज होकर डैन

के साथ अमेरिका चली जाती है और वहाँ अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की तलाश करती है। राधिका के रूप में उषा जी ने किसी और की विचार–धारा को स्वयं पर न थोपकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खोजने वाली स्त्री को प्रस्तुत किया है। राधिका द्वारा अपने पिता के दूसरे विवाह को अस्वीकार करना और उनसे दूर चले जाने का कारण भारतीय समाज की उस पुरूषवादी सोच को अस्वीकार करना है जहाँ पुरूष समझता है कि वह जो करेगा वही सही है। ऐसी ही पुरूषवादी सोच का विरोध ‘नदी’ उपन्यास की नायिका ‘आकाश गंगा’ ने भी किया है। जब उसके पुत्र भविष्य की ल्यूकीमिया से मृत्यु हो जाती है तो डॉ0 सिन्हा पूर्ण रूप से गंगा को ही दोषी मानते हैं। गंगा अपने मन को शान्त करने के लिए कुछ दिनों के लिए अपनी बहन के घर जाती है और जब वापस लौटती है तो हतप्रभ रह जाती है उसका घर बिक चुका है डॉ0 सिन्हा उसे धोखा देकर उसकी बेटियों को लेकर हमेशा के लिए भारत लौट गए हैं। कोई पुरूष इतना निष्ठुर कैसे हो सकता है? लेकिन डॉ0 सिन्हा गंगा को पराये देश में अनाश्रित और एकदम अकेला छोड़ गए थे। गंगा का जब इस यथार्थ से सामना होता है तो वह बुरी तरह टूट जाती है परन्तु फिर भी वह हार नहीं मानती और अपने टूट कर बिखरे आत्मविश्वास को एकत्रित कर फिर से खड़ी होती है वह बता देना चाहती है कि भविष्य के जाने में उसका कोई दोष नहीं था। वह अपने परिवार के पास भारत लौटती है सभी उसे प्यार करते हैं पर डॉ0 सिन्हा उसे स्वीकार नहीं करते तभी उसे ‘स्तव्य’ का आभास होता है– “यह बच्चा तो उसे चाहिए ही चाहिए–चाहे जैसे भी जीवन निर्वाह करना पड़े।’’[5] जब गंगा अपने अन्दर एक पुष्प के पल्लवित होने का आभास करती है तो वापस अमेरिका लौट आती है। वह स्त्रीत्व पर लगी उस चोट को भरना चाहती है, बाहर निकलना चाहती है उस पुरूषवादी सोच से जो जीवन की हर समस्या का दोषी स्त्री को समझते हैं। पुत्र प्राप्ति और डॉ0 सिन्हा से अलगाव के बाद गंगा ने अपना सर्वस्व प्राप्त कर लिया ल्यूकीमिया को हरा कर जब स्तव्य गंगा से मिलने आता है तो गंगा का हृदय अपने पुत्र को देखकर पुलक उठता है। गंगा का मातृत्व, उसका त्याग और स्तव्य का स्वस्थ रहना डॉ0 सिन्हा की सोच और विचार को गलत सिद्ध करता है।

सुषमा, राधिका और गंगा के रूप में उषा जी ने जिस यथार्थ को उद्घाटित किया है उसका चरम रूप ‘शेत्र यात्रा’ की ‘अनुका’ और ‘अन्तर्वंशी’ की नायिका ‘वाना’ के चरित्र के रूप में प्रकट हुआ है। शेषयात्रा की अनुका पूर्ण रूपेण भारतीय संस्कारों में लिपटी भारतीय नारी है, जो अपने पति प्रणव को ही अपना सब कुछ मानती है। प्रणव पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने वाली अनुका जब पति द्वारा तलाक देने की बात सुनती है। तो स्तब्ध रह जाती है।

“ “छोड़ दो मुझे,’’ प्रणव ने दो टूक उत्तर दिया।

“छोड़ दूँ ? कैसे!’’

“अलग हो जाओ। मुझसे अब तुम्हें कुछ भी सन्तोष नहीं मिलता......’’[6]

प्रणव से अलग वह अपने जीवन की कल्पना मात्र से भी काँप उठती है, वह प्रणव को हर प्रकार से खुश रखने का प्रयास करती है किन्तु अन्त में असफल हो जाती है वह सोचती है कि पति से अलग होने से अच्छा है कि उसे मृत्यु ही आ जाए, किन्तु ऐसी विषम परिस्थिति में अनुका की सहेली दिव्या उसे सांत्वना देती है और जीने की नई दिशा दिखाती है। डरी, दबी और घरेलू जीवन जीने की अभ्यस्त अनुका धीरे–धीरे स्वयं को मजबूत करते हुए अपने वजूद को तराशने लगती है। अपनी सहेली दिव्या का साथ पाकर, परदेश में अकेली रहकर वह अपनी पढ़ाई पूरी करती है और एक सफल डॉक्टर के रूप में स्वयं को स्थापित करती है। प्रणव की कटु स्मृतियों से बाहर निकलकर वह दिव्या के भाई दीपांकर से विवाह कर एक खुशहाल जीवन व्यतीत करती है। अनुका के व्यक्तित्व का यह बदलाव वर्तमान नारी जाति के लिए एक प्रेरणा बनता है। अनुका के माध्यम से उषा जी यह स्पष्ट करने में पूर्णतः सफल हुई हैं कि स्त्री किसी भी पुरूष के लिए खिलोना मात्र नहीं है। स्त्री यदि चाहे तो वह स्वयं अपनी अलग पहचान बना सकती है उसके लिए उसे पुरूष की आवश्यकता नहीं है। अनुका जैसी

स्त्रियाँ पुरूषों के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगा देती है। शेषयात्रा की अनुका की चरम परिणति अन्तर्वंशी की वाना में दिखाई देती है। भारतीय परिवेश में पली वाना और अनुका ऐसी स्त्रियाँ है जिनके लिए उनका पति, परिवार और बच्चे ही सब कुछ हैं, किन्तु पुरूष अपने अहंकार और स्वच्छन्दवादी सोच के कारण उनके समर्पण को अनदेखा करता है। वाना का पति 'शिवेश' भी प्रणव की भाँति पुरूषवादी अंह भाव से युक्त है। वह एक आत्मकेन्द्रित और स्वार्थी व्यक्ति है, वह वाना को अपनी और अपने बच्चों की देखभाल करने वाली परिचारिका समझता है और उसे मानसिक व शारीरिक प्रताड़ना देना स्वाभाविक बात समझता है परन्तु वाना भी अनुका की भाँति अपने पति के इस मिथ्या अभियान को चूर-चूर कर देती है। "वह स्त्री है, पत्नी है, अब तक बिना शिकायत उनकी जिद, उनके आग्रह के सामने झुकती आई है। पर अब नहीं। उसे शिवेश के बदन की महक से वितृष्णा हो गई है। वह अब उसे नहीं झेल पायेगी।''[7] वाना भारतीय सोच को स्वयं पर हावी नहीं होने देती। शिवेश की बेवफाई के कारण वह शिवेश और अपने रिश्ते को जन्म-जन्मान्तर का रिश्ता मानने से इंकार कर देती है। शिवेष के विश्वासघात और मानसिक यातना को वह सिर झुकाकर स्वीकार नहीं करती।

अनुका और वाना के चरित्र में अन्तर केवल इतना है कि जहाँ अनुका पति द्वारा छोड़ी जाती है, वहीं शिवेश की बेवफाई देखकर वाना अपने आत्मसम्मान के साथ समझौता करना स्वयं स्वीकार नहीं करती। पुरूषों के दोहरे चरित्र की मानसिकता को झेल रहीं स्त्रियाँ उनके झुठे प्रलोभन और छलावे में आकर कभी-कभी अपने जीवन के लिए कठोर निर्णय भी कर डालती है फिर वह स्त्री के प्रति सम्मान और मृदु भाव रखने वाले पुरूषों पर भी विश्वास नहीं कर पातीं। पुरूषों की दृष्टि में सदैव हीन समझी जाने वाली नारी पुरूषों के बदलते व्यवहार पर उनकी सोच पर सहसा ही विश्वास नहीं कर पाती- "मैं नॉर्मल नहीं हूँ- यह तुम जान गए हो, मैं आक्रान्त हूँ, रोग के विचार से दारूण रूप से ग्रस्त हूँ''।

" हम इस बिन्दु पर आकर ठहर नहीं सकते यमन। चलो तुम एक साड़ी खरीद लो और आज शाम को ही शत्रुहन हमारा विवाह कर देंगे''।[8] कैसर जैसी घातक बीमारी से जूझने के बाद यमन (लिली) अपने अपूर्ण शरीर से आहत थी और उससे भी कहीं ज्यादा आहत थी वह उस यथार्थ से जहाँ पुरूषों की दृष्टि में स्त्री को केवल प्रेम की वस्तु समझा जाता है। शेषेन्द्र और अपूर्व जैसे पुरूषों ने उसकी सोच पर मुहर लगा दी थी कि स्त्री शरीर की अपूर्णता पुरूषों की विमुखता का कारण है जैसे वह स्त्री न होकर कोई खेल की वस्तु हों जिनके टूट जाने पर उसे अपने से अलग कर दिया जाता है। मार्कस जैसे अमानवीय सोच वाले व्यक्ति भी स्त्री मन को आतंकित करते हैं। इसका एक और उदाहरण उषा जी के उपन्यास अर्कदीप्त की सौदामिनी है। अतीत की यातनाओं के ज़ख्म नारी मन को इतना छलनी कर देते हैं कि उसका आहत मन उसे भविष्य के प्रति निराशावादी बना देता है। वह खुशियों का दामन थामने से पहले ही सहम जाती है और अपने सुनहरे भविष्य से पलायन कर जाती है- "न जाने क्यों अपने सुख पर, भाग्य पर विश्वास नहीं होता। डरती रहती हूँ कि कहीं कोई आकर स्वप्न भंग न कर दे। तुमसे प्यार करती हूँ अर्को। मगर न जाने क्यों इतनी असुरक्षा, इतनी इनसिक्योरिटी मन में भिंद गई हैं। मेरी जिंदगी अब तक दु:ख भरी रही है जिसे प्यार किया उसी ने धोखा दिया''[9] अर्कदीप्त जब पहली बार सौदामिनी से मिलता है तभी उसे सौदामिनी से प्रेम हो जाता है और वह उससे विवाह भी करना चाहता है वह सौदामिनी के समक्ष विवाह प्रस्ताव भी रख देता है। सौदमिनी भी अर्कदीप्त से प्रेम करती है पर विवाह की बात पर विचलित हो जाती है और इस बात को टाल देती है। मगर अर्कदीप्त विवाह की ठान लेता है तब सौदामिनी को अपने अतीत का यथार्थ स्मरण हो आता है कि किस प्रकार उसने अपने परिवार का विरोध कर पिनाक भट्टाचार्य से प्रेम विवाह किया था, परन्तु विवाहोपरान्त उसकी एक भूल पर भट्टाचार्य ने उसके साथ कितना अमानवीय व्यवहार कर उसे भाँति-भाँति की यातनाएँ दी। सौदामिनी का अजन्मा शिशु भी इस यातना की बलि चढ़ गया, यह दर्द वह कभी भुला नहीं पाई। प्रेम में धोखा खाने वाली स्त्री सहर्ष ही किसी पर भरोसा नहीं कर पाती। वह अर्कदीप्त से प्रेम तो करती है पर डरती है कि कहीं फिर से धोखा ना खा जाए अपने डर के कारण वह उस पर

विश्वास नहीं कर पाती और उसे छोड़कर बिना बताए ही उसके जीवन से दूर चली जाती है। स्त्री जीवन के कटु यथार्थ को उषा जी ने बड़ी मार्मिकता के साथ व्यक्त किया है उन्होंने स्त्री के साथ समाज में हो रहे दोगले व्यवहार को उजागर किया है। पुरूष प्रधान समाज में पुरूषों की वर्चश्ववादी सोच स्त्री के लिए सदैव ही घातक रही है। समाज में स्त्री का भी उतना ही महत्व है जितना कि पुरूष का परन्तु फिर भी नारी को हीन ही समझा जाता है। समाज द्वारा बनाए गए नियम केवल स्त्री पर ही लागू होते हैं। उषा जी ने अपने उपन्यास अल्पविराम में स्त्री–पुरूष समानता वाले खोखले यथार्थ को उद्घाटित किया है– "हमारे परिवार में एक और परिपाटी थी–वह यह थी कि घर की लड़कियों की कम उम्र में शादी कर देना पर लड़को पर यह लागू नहीं होता''। 10 कहने को तो समाज में स्त्री और पुरूष को समान स्थान प्राप्त है पर व्यवहार में ऐसा नहीं है। नए–नए नियम बनाकर स्त्री पर अंकुश लगा दिया जाता है। शिक्षा का अधिकार सभी के लिए समान है पर नायिका शिंजिनी के पिता ने अपने परिवार की पुरानी परम्परानुसार बेटे की पढ़ाई को जारी रखा और बेटी का छोटी उम्र में ही विवाह कर दिया। जिसका दंश शिंजिनी ने छोटी उम्र में ही झेला। सामाजिक मर्यादाओं और परिवार की रीति–रिवाजों के नाम पर नारी को हमेशा छला गया है। समाज की इस दबी–कुचली रिवाज़ ने महिलाओं के पैरो मे बेड़ियों का काम किया है, परन्तु संघर्षशील स्त्री इन बेड़ियों को तोड़ने में सफल ही नहीं हुई बल्कि शिंजिनी की तरह अपने जीवन के महत्वपूर्ण फैसले भी स्वयं लेने में समक्ष हुई है।

उषा जी ने अपनी नारी पात्रों को परिस्थितियों के सामने निस्सहाय या विवश नहीं होने दिया अपितु उनकी नारी पात्र मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को झेलने के पश्चात् सामाजिक रूढ़ियों और बंधनों को तोड़कर पुरूषवादी सोच पर कुठाराघात करते हुए, आधुनिक सोच के साथ अपने अस्तित्व को खड़ा करने में सफल हुई है।

निष्कर्ष:– उषा जी का साहित्य विशेषत: नारी जीवन के दाम्पत्य सम्बंधों के कटु यथार्थ का विशेष रूप से उल्लेख करता है। नारी परिवार और समाज के विकास की धुरी है किन्तु बदलते समय में आज भी वह सामंती पुरूषवादी मानसिकता का शिकार है। भारतीय परिवेश में पली–बढ़ी उषा जी ने भारतीय नारी जीवन के कटु यथार्थ की बड़ी गहराई से देखा और समझा है, नारी की दारुण स्थिति से वे भली–भाँति परिचित हैं अत: उसके जीवन की वेदना, तड़प, घुटन, पीड़ा, दर्द और मानसिक छटपटहाट को बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ अपने उपन्यासों के माध्यम से उद्घाटित करने में सफल हो सकी हैं। बदलते सामाजिक परिवेश में लेखिका ने भारतीय नारी की बदलती हुई मान्यताओं, विश्वासों और परिस्थतियों को चित्रित किया है। उषा जी के नारी पात्र परिस्थितियों के आगे झुकते नहीं अपितु उनसे संघर्ष करते हुए समाज में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित करते हैं। तथा भारतीय रूढ़िवादी परम्पराओं में जकड़कर स्वयं को असहाय नहीं बनाते, बल्कि जीवन के कटु सत्य को स्वीकार करते हुए अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के नवनिर्माणकर्ता के रूप में उभरते हैं।

अत: यह कहा जा सकता है कि नारी जीवन यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में उषा जी के उपन्यास वर्तमान जीवन का सारगर्भित अंश है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:–

1. डॉ0 एन0के0 जोसेफ, हिन्दी उपन्यासों में व्यक्तिवादी चेतना, पृ0सं0–160
2. नयना, समकालीन उपन्यास, पृ0सं0–206
3. उषा प्रियंवदा, पचपन खंभे लाल दीवारें, पृ0सं0–135
4. उषा प्रियंवदा, रूकोगी नहीं राधिका, पृ0सं0–49
5. उषा प्रियंवदा, नदी, पृ0सं0–85

6. उषा प्रियंवदा, शेषयात्रा, पृ0सं0–56
7. उषा प्रियंवदा, अन्तर्वंशी, पृ0सं0–101–102
8. उषा प्रियंवदा, भया कबीर उदास, पृ0सं0–175
9. उषा प्रियंवदा, अर्कदीप्त, पृ0सं0–113
10. उषा प्रियंवदा, अल्पविराम, पृ0सं0–22